ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol.-6* Issue-8* September- 2021
Innovation The Research Concept

उपनिषदों में ब्रह्म का स्वरूप -एक विश्लेषण

The Nature of Brahma in the Upanishads - An Analysis

Paper Submission: 10/09/2021, Date of Acceptance: 23/09/2021, Date of Publication: 24/09/2021

बबीता शर्मा
आसिस्टेंट प्रोफेसर,
दर्शन विभाग,
कन्या गुरूकुल परिसर
गुरूकुल कांगडी
सम विश्वविद्यालय
हरिद्वार, उत्तराखण्ड,भारत

सारांश

वेद समस्त ज्ञान-विज्ञान का मूल स्त्रोत है। अतएव उपनिषदों का भी मूल वेद ही है। वस्तुतः मन्त्र एवं ब्राह्मण इन दोनो को वेद शब्द से अभिहित किया जाता है-"मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्"[1] इस वक्तव्य के अनुसार मन्त्र और ब्राह्मण दोनो वेद पद का अभिधेय है। मन्त्र भाग के अन्तर्गत मूल चार संहिताये तथा ब्राह्मण भाग में कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड और ज्ञानकाण्ड का उल्लेख किया जाता है। इनमें से ज्ञानकाण्ड को ही उपनिषद् शब्द से कथित किया गया है। अतः स्पष्ट है, कि ब्राह्मण भाग के ज्ञानकाण्ड ही उपनिषद् है। इस प्रकार उपनिषदों में ब्रह्म का स्वरूप कैसा है? इसका प्रतिपादन प्रस्तुत शोध पत्र में किया गया है।

Veda is the root source of all knowledge and science. Therefore the root of the Upanishads is also the Vedas. In fact, both the mantra and the brahmana are designated by the word Veda - "Mantra Brahmana Yorvednamdheyam"[1] According to this statement, both the mantra and the brahmin are the words of the Vedas.The basic four codes are mentioned in the mantra part and rituals, worship and knowledge in the brahmin part. Of these, the Gyankand itself has been described by the word Upanishad. Therefore, it is clear that the knowledge of the Brahman part is the Upanishad. Thus what is the nature of Brahman in the Upanishads? This has been presented in the present research paper.

मुख्य शब्दः ब्रह्म, सत्य, ज्ञान, आनन्द, आत्मा, उपनिषद्, स्वरूप, तटस्थ, नित्य, प्रकाश स्वरूप, सर्वव्यापक, स्वयं ज्योति, सर्वज्ञ, निर्विकार, कूटस्थ, सर्वशक्तिमान, पारमार्थिक, चैतन्य।

Keywords: Brahman, Truth, Knowledge, Ananda, Atman, Upanishad, Swaroop, Neutral, Eternal, Light Form, Omnipresent, Self-Light, Omniscient, Immortal, Kutastha, Almighty, Transcendental, Chaitanya.

प्रस्तावना

वस्तुतः उपनिषद् क्या है? तथा इसकी व्युत्पÝिा किस प्रकार से हुई है, अर्थात् इसमें प्रकृति एवं प्रत्यय कौन सा है। इसका मौलिक अर्थ व स्वरूप कैसा है? इन समस्त प्रश्नों का यथेष्ठो हेतु सर्वप्रथम इस शब्द के व्युत्प परक अर्थ पर दृष्टिपात् करना अपेक्षित है। उपनिषद् शब्द 'उप' एवं 'नि' उपसर्ग पूर्वक 'षदलृविशरणगत्यवसादनेषु'[2] धातु से 'क्विप्' प्रत्यय होकर निष्पन्न होता है। जिसका अर्थ है-'उप'-समीप में, 'नि'- निश्चय पूर्वक अथवा निष्ठापूर्वक, 'सद्'- यानी अवस्थित या स्थित होना, अर्थात् तÝवज्ञान के लिए गुरू के समीप में बैठना।

धातु पाठ में 'षदलृ' अर्थात् सद् धातु के तीन अर्थ होता है-प्रथम- विशरण अर्थात् विनाश, द्वितीय- गति यानी प्राप्ति तथा परिशेष तृतीय-अवसादन मतलब शिथिल या निष्क्रिय होना। इस प्रकार जो ब्रह्मविद्या समस्त अनर्थो के उत्पादक सांसारिक क्रिया-कलापों का नाश करती है, तथा संसार के कारणभूत अविद्या, माया, अज्ञान के बन्धनों को शिथिल करती है, और एक एव अद्वितीय ब्रह्म का साक्षात्कार करा देती है। वह उपनिषद् पद का अभिधेय है-

"उपनिषादयति सर्वानर्थकरं संसारं विनाशयति, संसारकारणभूतामविद्यां च शिथिलयति, ब्रह्म च गमयति इति उपनिषद्"।[3]

पुनः इसके विषय में मुण्डकोपनिषद् में वर्णन किया गया है,कि ब्रह्म के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान हेतु श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरू के शरण में जाना चाहिए-

"तद्विज्ञानार्थं स गुरूमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् "।"

उपनिषदों में ब्रह्म के स्वरूप का ज्ञान हेतु दो प्रकार के लक्षण किया गया है। जो यथा क्रमशः स्वरूप लक्षण एवं तटस्थ लक्षण है-**"तत्र लक्षणं द्विविधम्-स्वरूप लक्षणं तटस्थ लक्षणं चेति"।**

(क) **स्वरूप लक्षण**

वस्तुतः स्वरूप लक्षण के विषय में यह अभिकथन किया गया है, कि- "स्वरूपान्तर्गतत्वे सति व्यावर्तकं यत् तत् स्वरूप लक्षणम्"[5] अर्थात् स्वरूप के अन्तर्गत विद्यमान होता हुआ, जो अन्यो से व्यावर्तक होता है। वह स्वरूप लक्षण कहलाता है। अथवा स्वरूपभूत लक्षण को ही स्वरूप लक्षण कथन किया जाता है-"तत्र स्वरूपमेव लक्षणम्, स्वरूपलक्षणम्"। इसके सन्दर्भ में प्रमाण इस प्रकार है-"सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" "आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्" इसका आशय है,कि सत्, चित, आनन्द ब्रह्म का स्वरूप लक्षण है। अतः ब्रह्म सत्य ज्ञान एवं अनन्त है,तथा ब्रह्म आनन्द स्वरूप भी है,ऐसा जानना चाहिए। अतः स्पष्ट है,कि सत्, चित, आनन्द ब्रह्म का स्वरूप है। असत् जड दुःखादि से पृथक् करके ब्रह्म का

प्रतिपादक होने से इसी को हम ब्रह्म का लक्षण कहते है। वस्तुतः यह ब्रह्म का स्वरूप है,क्योकि ब्रह्म का सच्चिदानन्द स्वरूप है। यह लक्षण ब्रह्म को असत् जड दुःखरूप प्रपंच से पृथक् करके उसको बताता है। अतः इसको स्वरूप लक्षण कहते है।

इस प्रकार ब्रह्म का स्वरूप नित्यशुद्धबुद्ध मुक्त स्वभाव, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, नित्य, सर्वगत, नित्यतृप्त, सर्वक्रियारहित, निरवयव, निर्विकार, निरंजन, निर्गुण, साक्षिस्वरूप, पारमार्थिक, कूटस्थ, व्योमवत्सर्व व्यापक, स्वयं ज्योति स्वभाव वाला चैतन्य है। ये सब पूर्वोक्त ब्रह्म के स्वरूप लक्षण है, क्योकि ये लक्षण ब्रह्म में सदैव विद्यमान रहता है। इसके अतिरिक्त अपर द्वितीय ब्रह्म के तटस्थ लक्षण इस प्रकार है-

तटस्थ लक्षण

ब्रह्म के तटस्थ लक्षण के परिपेक्ष्य में यह कथन किया गया है,कि जो लक्ष्य में यावत्काल पर्यन्त स्थिर न रहकर इतर लक्ष्य का व्यावर्तक अर्थात् अन्य पदार्थ से भेदक हो वह तटस्थ लक्षण कहलाता है-

"तटस्थ लक्षणं तु यावल्लक्ष्यकालमनवस्थितत्वे सति यद् व्यावर्तकं तत् तटस्थ लक्षणम्"।[6]

इसका आशय है,कि ब्रह्म में जगत् की उत्पति, स्थिति, प्रलय हेतुत्व भी सृष्टि काल में ही रहता है। प्रलय के अनन्तर जगत् में ही न होने से उसका कारणत्व भी उसमें नही रहता है। तथा जगत् का कारणत्व, ब्रह्म व्यतिरिक्त अन्य पदार्थो में सम्भव न होने से वह ब्रह्म को अन्यो से व्यावृत अर्थात् भिन्न करता है। अतः "जगज्जन्मादिकारणत्व" ब्रह्म का तटस्थ लक्षण है।

तात्पर्य है, कि जो किसी समय में लक्ष्य में अवस्थित रहता है,तथा अन्य समय में विलुप्त हो जाता है। इसको ब्रह्मसूत्र में "जन्माद्यस्य यतः" के रूप में वर्णित किया गया है। इस प्रकार प्रपंच की जन्म, स्थिति तथा प्रलय जिसमें होता है, वह ब्रह्म है। इसमें अन्य श्रुति भी प्रमााण है-"यतो वा इमानि भूतानि"।

पुनः उपनिषदों में ब्रह्म का स्वरूप कैसा है? इसके ज्ञान हेतु यथा क्रमशः ईशादि उपनिषदों में वर्णित उसके स्वरूप का विवेचन करना अपेक्षित है-

1. ईशावास्योनिषद्- इस उपनिषद् में ब्रह्म का स्वरूप के विषय मे यह अभिकथन किया गया है, कि वह कम्पनादि क्रियारहित एक अत्यन्त गतिशील मन से भी अधिक वेगवान् इस सर्वव्यापक ब्रह्म तत्व को आजतक चक्षुरादि इन्द्रिया प्राप्त नही कर सका है। काल एवं वायु आदि अत्यन्त वेग से भागने वाले को भी यह अतिक्रमण कर देता है। वस्तुतः कतिपय लोग इसके विषय में यह कथन करतें है कि ब्रह्म सर्वव्यापक होने के कारण चलायमान नही होता है-

"अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्षत्।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठÝ ास्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति"॥[7]

इसके अतिरिक्त इस विषय में यह कथन किया गया है,कि जब पुरूष इस परिदृश्यमान विश्व का आधर परमात्मा को मानता है। इस ज्ञान की प्राप्ति के अनन्तर वह पुरूष पूर्ण हो जाता है। पुनः वह कदापि किसी का निन्दा स्तुति नही करता है। इस मन्त्र में ब्रह्म के स्वरूप व उसके ज्ञान के फल का प्रतिपादन किया गया है-

"यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति ।
सर्वभूतेषु चाऽऽत्मानं ततो न विजुगुप्सते"॥[8]

प्रस्तुत मन्त्र के व्याख्यान में अद्वैतवादि का मन्तव्य है,कि जब पुरूष इस समस्त ससार को अपने आप मे देखता है,तथा संसार के सभी भूतों को अपने में देखता है। तो वह किसी की निन्दा स्तुति नही करता है।

जिस ब्रह्म का साक्षात्कार के अनन्तर योगी समदर्शी हो जाता है। उस ब्रह्म तÝव का स्वरूप क्या है? इसका व्याख्यान करते हुये यह कथन किया गया है,कि वह ब्रह्म समस्त स्थानों पर गया हुआ है। दीप्तिमान् अकाय अर्थात् शरीर से रहित नस नाड़ियों से भी सर्वथारहित घाव से भी रहित सभी प्रकार से पवित्र पापरहित क्रान्तदर्शी सभी जगह संव्याप्त स्वयं सत्तर वाला तथा वह जिस प्रकार का अभिलाषा करता है। वह उस प्रकार के सृष्टि के पदार्थो का रचना करता है,तथा उसकों धारण भी करता है। वह सदैव समस्त व्यवधानो से रहित है। कल्प-कल्पान्तरों में भी विद्यमान है। प्रस्तुत मन्त्र में ब्रह्म को शुद्ध, शुक्र, कविः, मनीषी, परिभूः, स्वयंभू, शाश्वतीभ्यः इन विशेषणों से युक्त कथन किया गया है। अतः पूर्वोक्त समस्त गुण उसके विधेयात्मक है,तथा अकायं, अव्रणं, अस्नाविरम्, अपापविद्धम् ये विशेषण उसके निषेधात्मक रूप का व्याख्या करता है-

"स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः"॥[9]

2. केनोपनिषद्- प्रस्तुत उपनिषद् में ब्रह्म के स्वरूप का विवेचन नाटकीय ढ़ग से किया गया है। प्रारम्भिक मन्त्रो में यह उल्लेख किया गया है,कि वह कौन सा देव है। जो समस्त इन्द्रियों को यथा चक्षु, श्रोत्र, वाणी आदि को शरीर के साथ सयुक्त करता है,तथा विशेषतः मन एवं वाणी को भी अभिप्रेरित करता है-

"केनेषितं पतति प्रेषितं मनः केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः ।
केनेषितां वाचमिमां वदन्ति चक्षुः श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति"॥[10]

इन सभी को प्रेरणा प्रदाता शरीर से संयुक्त करने वाला देव परमात्मा अथवा ब्रह्म है। जिसके यथार्थ स्वरूप को जानकार लोग अमर हो जाते है-

"श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचो ह वाचं स उ प्राणस्य प्राणः।
चक्षुषश्चक्षुरतिमुच्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति"॥[11]

इसके अतिरिक्त जिनका मन्तव्य यह है,कि ब्रह्म सगुण अर्थात् साकार है। उसका इस उपनिषद् में खण्डन किया गया है। अतः उस ब्रह्म तŸव को समस्त इन्द्रियों के माध्यम से नही जाना जा सकता है। अपितु इन मन के सहित सभी इन्द्रियों में जो सामर्थ्य है। वह उस ब्रह्म की सŸाा से है। इसका आशय है,कि उस ब्रह्म की महिमा के विषय में यह भी कथन किया गया है,कि श्रोत्र श्रवण करता है। मन मनन करता है,तथा प्राण गति करता हैं। उसको ही तुम वास्तव में ब्रह्म जानो वही उपास्य है। सामान्यतः जिसकी उपासना किया जाता है। वह वास्तव में ब्रह्म नही है-

"यच्छोत्रेण न श्रृणोति येन श्रोत्रमिदं श्रुतम्। तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते"॥[12] इसके विषय में पुनः यह भी वर्णन किया गया है,कि जिन लोगो कि मान्यताये यह है, कि मैने ब्रह्म को जान लिया वे वास्तव में उस ब्रह्म को नही जानते है, क्योंकि ब्रह्म का स्वरूप ज्ञेय नही होता है अपितु वह ज्ञाता है। वह वास्तव में शब्दों द्वारा नही जाना जा सकता है-

"यदि मन्यसे सुवेदेति दभ्रमेवापि नूनं त्वं वेत्थ ब्रह्मणो रूपम्।
यदस्य त्वं यदस्य देवेष्वथ नु मीमांस्यमेव ते मन्ये विदितम्"॥[13]

इस उपनिषद् में ब्रह्म की महिमा का वर्णन रूपक के द्वारा किया गया है। ये अग्नि, वायु, जल, आदि देव उस अद्वितीय ब्रह्म के शक्ति के बिना कुछ भी नही कर सकते है। यथा उदाहरणतः- अग्नि में जो दाहकता की शक्ति, वायु में प्रक्षेपण के सामर्थ्य तथा जल मेंं जो बहाने या गीलापन करने की शक्ति उस ब्रह्म के सामर्थ्य से प्राप्त होता है। अतः स्पष्ट है,कि जड़ वस्तुओं का नियमन कर्ता ब्रह्म ही है। इस प्रकार ब्रह्म का स्वरूप आत्मा के द्वारा साक्षात्कार होता है। अतएव ब्रह्म का स्वरूप अचिन्त्य सर्वशक्तिमान है। इस उपनिषद् में प्रायशः ब्रह्म के स्वरूप का व्याख्यान निषेधात्मक पद्धति से किया गया है।

3. कठोपनिषद्- इस उपनिषद् में ब्रह्म के मुख्य नाम ओऽम् का प्रतिपादन है,तथा यह उल्लेख किया गया है,कि जिसका समस्त वेद वर्णन करते है। जिसे प्राप्त करने हेतु तप एवं ब्रह्मचर्यादि व्रतों का पालन किया जाता है। उसको ओऽम् पद से अभिकथन किया गया है-

"सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तŸो पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्"॥[14]

इस ओंकार का उल्लेख वेदों एवं उपनिषदों में मुख्य रूप से किया गया है। इसके परिपेक्ष्य में यह भी वर्णन है,कि उसका ही आवलम्बन सर्वश्रेष्ठ है। वस्तुतः ब्रह्म के स्वरूप के विषय में विवेचन किया गया है,कि वह परमाणु से भी सूक्ष्मतर है,तथा आकाशादि पदार्थो से भी महŸार सर्वव्यापक व महान है। अपने अन्तःकरण अर्थात् हृदयरूपी गुहा में विराजमान उस ब्रह्म की महिमा उस परमात्मा की कृपा से निष्काम कर्मो तथा शोक से रहित होकर उसका साक्षात्कार किया जाता है-

"अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम् ।
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुप्रसादान्महिमानमात्मनः"॥[15]

वह ब्रह्म अपनी सŸाा से सर्वत्र विद्यमान है। अतः वह एक स्थान पर अवस्थित होता हुआ भी अतिदूर देश में जा सकता है। सर्वव्यापक होने से वह व्याप्य वस्तुओं के सभी तरफ से घेरे हुये है। वह आनन्द स्वरूप होने से मद तथा इन्द्रिय अन्य हर्ष के होने से अमद कथन किया जाता है।

प्रस्तुत उपनिषद् में ब्रह्म की व्यापकता तथा सूक्ष्मता का वर्णन करते हुये यह अभिकथन किया गया है, कि वह शरीर धारियों में शरीर रहित है, तथा अनित्य वस्तुओ में नित्य है और अवस्थित है। इस प्रकार ब्रह्म के स्वरूप विभु व्यापक जानकर भी साधक उस सŸाा को स्वीकार करते है,तथा शोक से रहित हो जाते है-

"अशरीरं शरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम्।
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति"॥[16]

ब्रह्म का स्वरूप सर्वव्यापक है। इसका प्रतिपादन इस उपनिषद् में भौतिक अग्नि कें दृष्टान्त द्वारा किया गया है। यथा एक ही अग्नि लोक-लोकान्तर में संव्याप्त होकर प्रत्येक पदार्थो में उसके आकार रूप में अवस्थित होता है। उसी प्रकार एक अन्तर्यामी स्वरूप ब्रह्म ही सभी पदार्थो में व्यापक हो रहा है। उस पदार्थ के अन्दर एवं बाह्य में भी विद्यमान है-

"अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च"॥[17]

वायु के दृष्टान्त से भी ब्रह्म के स्वरूप की सर्वव्यापकŸाा का प्रतिपादन किया गया है। जिस प्रकार एक ही वायु सभी लोक-लोकन्तर में व्याप्त होता हुआ तदाकार हो जाता है। उसी प्रकार यह ब्रह्म भी समस्त भूतों में अन्तर्यामी होता हुआ उसके बाह्य में भी विद्यमान रहता है-

"वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च"॥[18]

4. प्रश्नोपनिषद् - प्रस्तुत उपनिषद् में ब्रह्म के स्वरूप का वर्णन प्रश्नोŸार विधि के रूप में किया गया है। ब्रह्म के विषय में ऋषि पिप्पलाद का वक्तव्य है, कि जिस प्रकार पक्षी अपने निवास स्थान वृक्ष को प्राप्त होता है। उसी प्रकार इस समस्त जगत् के पदार्थ उस ब्रह्म में ही निवास करता हैं। आशय है, कि उस परमात्मा से सूक्ष्मतर कोई भी नही है-

"स यथा सोम्य वयांसि वासोवृक्षं सम्प्रतिष्ठन्ते एवं ह वै तत्सर्वं पर आत्मनि सम्प्रतिष्ठते"॥[19]

इसके अतिरिक्त ब्रह्म कें विषय में वर्णन किया गया है,कि वह ब्रह्म अज्ञान से रहित शरीर से रहित व्रणो से रहित प्रकाश स्वरूप अविनाशी परमात्मा यथार्थतः जानता है। इसका आशय है, कि परम सूक्ष्म ब्रह्म ज्ञाता सब कुछ जान लेता है, तथा उसके गुणों को धारण करके महान् हो जाता है-

''परमेवाक्षरं प्रतिपद्यते स यो ह वै तदच्छायमशरीरमलोहितं शुभ्रमक्षरं वेदयते यस्तु सोम्य।
स सर्वज्ञः सर्वो भवति। तदेष श्लोकः॥[20]

वस्तुतः इस उपनिषद् में ब्रह्म की महिमा सर्वव्यापकता तथा वह जड़ पदार्थो से सर्वथा पृथक् है। इसका विवेचन किया गया है।

5. मुण्डकोपनिषद्-इस उपनिषद् मे ब्रह्म के स्वरूप का वर्णन करते हुए यह अभिकथन किया गया है,कि वह ब्रह्म अत्यन्त दिव्य भूत धर्मो से पृथक्, सर्वत्र व्यापक तथा प्रत्येक पदार्थो के बाह्य व अन्तः में विद्यमान है। अतएव वह उत्पति से रहित प्राणों से रहित तथा मन से भी रहित है। वस्तुतः ब्रह्म प्रकाश स्वरूप व अव्याकृत प्रकृति से भी परम सूक्ष्म है-

''दिव्यो ह्यमूर्तः पुरूषः सबाह्याभ्यन्तरो ह्यजः।
अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो ह्यक्षरात्परतः परः''॥[21]

संसार के समस्त जायमान् पदार्थो में षड्भाव विकार उपलब्ध होता है। यथा क्रमशः उत्पन्न होता है। बढता है। परिणाम को भी प्राप्त होता है। किन्तु अद्वितीय ब्रह्म इन षड्भाव विकारों से सर्वथा रहित होने के कारण वह अमूर्त व निराकार है। उस निराकार ब्रह्म से ही मन प्राण तथा इन्द्रिये उत्पन्न होती है-

''एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च।
खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी''॥[22]

ब्रह्म के मूर्त रूप का वर्णन करते हुए उल्लेख किया गया है,कि यह अग्नि उसके मुख के समान है। चन्द्रमा एवं सूर्य चक्षु है। वायु प्राण तथा समस्त विश्व उसका हृदय स्थान है। पृथिवी पैर है। ऋग्वेदादि उसकी व्यक्त वाणी है। वस्तुतः वह ब्रह्म सभी का अन्तरात्मा है-

''अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ दिशः श्रोत्रे वाग्विवृताश्च वेदाः।
वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य पद्भ्यां पृथिवी ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा''॥[23]

यह अलंकार रूप में उस विराट ब्रह्म के स्वरूप का निरूपण किया गया है। ये अग्नि आदि अवयव उसमे आरोपित हैं। वास्तव में नही है,क्योंकि वह तो सर्वभूतान्तरात्मा है। वही सृष्टि का रचयिता भी है। वह अद्वितीय ब्रह्म सर्वत्र तथा सर्ववित् है। उसकी महिमा सृष्टि के रचना से परिलक्षित होती है। वह परमात्मा तŸव हृदय कमल में वर्तमान है। ज्ञान रूप है। प्राण तथा शरीर का संचालन करता है। प्रत्येक प्राणी में विद्यमान होता हुआ आनन्द की वृष्टि करता है-

''यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्यैष महिमा भुवि।
दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येष व्योम्न्यात्मा प्रतिष्ठितः॥
मनोमयः प्राणशरीरनेता प्रतिष्ठितोऽन्ने हृदयं सन्निधाय।
तद्विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीरा आनन्दरूपममृतं यद्विभाति''॥[24]

इसके अतिरिक्त ब्रह्म का स्वरूप के विषय में वर्णन किया गया है,कि वह ब्रह्म सर्वथा निष्कलंक ज्योतियों का भी ज्योति है। उसको आत्मवेŸाा विद्वान् लोग जानते है। वस्तुतः रूपक अलंकार के द्वारा उसका पं्रतिपादन किया गया है। अतः स्पष्टतः यह वर्णित है,कि वहॉ सूर्य का प्रकाश नही है। चन्द्रमा, नक्षत्र, विद्युत तथा अग्नि उसको प्रकाशित नही कर सकता है। वस्तुतः उस असीम, अनन्त, शाश्वत की शक्ति से समस्त भूमण्डल प्रकाशित हो रहा है-

''न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति''॥[25]

इसके उपरान्त ब्रह्म की सर्वव्यापकता का विस्तार से विवेचन करते हुये उल्लेख किया गया है, कि यह अमृत स्वरूप ब्रह्म सबसे पहले था बाद में भी रहेगा। पूर्व, पश्चिम, दक्षिण व उŸार समस्त दिशाओं में वह ब्रह्म ही फैला हुआ है। यह अद्वितीय ब्रह्म विश्व में श्रेष्ठ है। प्रस्तुत स्थल मे ब्रह्म को सजातीय विजातीय एवं स्वगतभेद से रहित कहा गया है। जगत् से पूर्व में उसकी सŸाा विद्यमान थी। यह नामरूपात्मक जगत् अव्याकृत प्रकृति में लीन था। वह प्रकृति ब्रह्म के आश्रित होने के कारण ब्रह्म के सजातीय भेद की आपादक न थी और स्वतन्त्र नही होने के कारण सजातीय भेद की आपादक न थी। अतः ब्रह्म को ही सर्वात्मत्वेन कथित किया गया है। उर्ध्व, अधः पूर्व पश्चिम दक्षिण उŸार भाव के कथन किया गया है,कि अनवच्छिन्न सŸाा से एक मात्र ब्रह्म ही सभी दिशाओं मे है। अतः वह ब्रह्म सर्वश्रेष्ठ है।[6]

वस्तुतः परम दीप्तिमान् ब्रह्म अणु से भी सूक्ष्म है। जिसमें समस्त लोक-लोकान्तर निवास करते है। समस्त प्राणी भी इसमें अवस्थित है। वही अक्षर अविनाशी ब्रह्म है। वह सभी शक्तियों की शक्ति है। हे सौम्य वह ही ज्ञातव्य है-

''यदर्चिमद्यदणुभ्योऽणु च यस्मिंल्लोका निहिता लोकिनश्च।
तदेतदक्षरं ब्रह्म स प्राणस्तदु वाड्.मनः।
तदेतत्सत्यं तदमृतं तद्वेद्धव्यं सोम्य विद्धि''॥[27]

इस उपनिषद् मे ब्रह्म को परम ब्रह्म के रूप में निरूपित किया गया है। अतः स्पष्ट है,कि परम विशेषण एक मात्र ब्रह्म के लिये ही प्रयुक्त है।

6. ऐतरेय उपनिषद्- इस उपनिषद् मे ब्रह्म का स्वरूप के विषय में उल्लेख किया गया है,कि वह ब्रह्म ही सबके पूर्व में विद्यमान था। अर्थात् कार्य रूप जगत् से पूर्व में उसकी सŸाा थी। उसके समान अपर

कोई भी तŸव नही है। जो उसकी स्पर्द्धा करता वह ब्रह्म निरपेक्ष रूप में वर्तमान है। वह अपने ईक्षण शक्ति के द्वारा समस्त लोक-लोकान्तरों को उत्पन्न करता है-

"आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्। नान्यत्किंचन मिषत्।
स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति"॥[28]

अन्य उपनिषदों के समान ही इसमे ब्रह्म को अनेक नामों से कथित किया गया है। यथा उसका नाम ईश्वर, ब्रह्म, इन्द्र, प्रजापति तथा प्रज्ञा नेत्र आदि है। जिससे सभी पदार्थ सŸाा रूप मे व्यक्त होकर लाभ को प्राप्त करता है। अतः उसका नाम नेत्र है। आशय है,कि ज्ञान रूप नेत्र हो जिसका उसका नाम प्रज्ञान है-**"एष ब्रह्मैष इन्द्र एष .....प्रज्ञानं ब्रह्म"।[29]**

7. तैŸिरीय उपनिषद्- इस उपनिषद् में ब्रह्म के स्वरूप का प्रतिपादन सत्य, ज्ञान, अनन्त के रूप में किया गया है। वस्तुतः वह एक अद्वितीय परमात्मा सत्य ज्ञान तथा अनन्त स्वरूप वाला है। सत्य का अर्थ है,कि जिसका तीनो काल में बाध्य नही होता है-"त्रैकालिकाबाध्यत्वं सत्यत्वम्"। ज्ञान का आशय है, जड आदि पदार्थो से पृथक् चेतन ज्ञान स्वरूप तथा परिशेष अनन्त पद का अर्थ होता है-"अविद्यमानो अन्तो यस्य स अनन्त" अर्थात् जिसका अन्त विद्यमान नही होता है, वह अनन्त है। वस्तुतः अन्त का तात्पर्य है, परिच्छेद यानी जो ब्रह्म तŸव परिच्छेद त्रय-देशपरिच्छेद, कालपरिच्छेद, तथा वस्तुपरिच्छेद से रहित हो वह अनन्त स्वरूप वाला ब्रह्म है। इस प्रकार ब्रह्म का स्वरूप सत्य, ज्ञान अनन्त है-"सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म"।[30] वह परम ब्रह्म विशुद्ध आकाश मंे विद्यमान रहता हुआ भी सभी के हृदय रूपी गुफा में छिपा हुआ है। उस परम तŸव ब्रह्म के स्वरूप को जो साधक तŸवतः जान लेता है। वह यथावत् सभी को जानने वाला उस ब्रह्म के साथ रहता हुआ सभी प्रकार के भोगो का अलौकिक तरीके से अनुभव करता है। इस प्रकार जो ब्रह्म के स्वरूप का वर्णन किया गया है। जो ब्रह्मज्ञानी उसको तŸवतः जान लेता है। वह परम पद को पाता है-

"ब्रह्मविदाप्नोति परम्"।

इसके अतिरिक्त इस उपनिषद् में ब्रह्म को विज्ञान एवं आनन्द स्वरूप बतलाया गया है- "विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्" **"आनन्दं ब्रह्मेति व्यजानात्"।[31]** अर्थात् ब्रह्म को विज्ञान एवं आनन्द स्वरूप जानो। वस्तुतः उस ब्रह्म तŸव को मन के साथ वाणी एवं समस्त इन्द्रिये जहॉ से उसे न पाकर लौट आती है। उस ब्रह्म के आनन्द स्वरूप को जानने वाला तŸववेŸाा पुरूष किसी से भयभीत नही होता है-'

"यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।
आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चन"॥[32]

इस उपनिषद् में ब्रह्म का स्वरूप सत्य, ज्ञान, अनन्त, विज्ञान व आनन्द के रूप में प्रतिपादित है।

8. श्वेताश्वेतरोपनिषद्- इस उपनिषद् में ब्रह्म के स्वरूप का वर्णन प्रश्नोŸार विधि के माध्यम से किया गया है। वह कारण रूप ब्रह्म क्या है? प्रकृति व जीवात्मा क्या है? वस्तुतः वह ब्रह्म नित्यो का नित्य, चेतनो का चेतन है। जो सांख्य तथा योग के द्वारा जाना जाता है। वह सृष्टि को व्याकृत करने में कारण है। उसके ज्ञान से ही मुक्ति मिल सकती है-

"नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान्।
तत्कारणं सांख्ययोगाधिगम्यं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः"॥[33]

पुनः ब्रह्म का स्वरूप के विषय में उल्लेख किया गया है,कि वह एक देव समस्त प्राणियों में संव्याप्त हुआ सर्वव्यापी तथा सभी प्राणियो का अन्तर्यामी रूप है। समस्त कर्मो का अधिष्ठाता सम्पूर्ण भूतो का निवास स्थान सभी का साक्षी चेतन स्वरूप सर्वथा विशुद्ध तथा निर्गुण अर्थात् गुणातीत है-

"एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च"॥[34]

वस्तुतः ब्रह्म का स्वरूप अणु से भी अणु अर्थात् सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर है,तथा महत् से भी महŸाार है। वह हमारे समस्त कर्मो का साक्षी है, तथा निर्गुण है-

"अणोरणीयान्महतो महीयानात्मा गुहायां निहितोऽस्य जन्तोः।
तमक्रतुं पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमीशम्"॥[35]

प्रस्तुत उपनिषद् में ब्रह्म का स्वरूप के विषय में यह भी वर्णन किया गया है,कि वह परमात्मा अपाणिपाद अर्थात् हाथ पैरो से रहित होकर भी सभी पदार्थो को ग्रहण करनेवाला है,तथा अतिवेग पूर्वक सर्वत्र गमन करनेवाला भी है। विना चक्षु के ही वह सबको देखता है। श्रवण इन्द्रियो के विना भी सुनता है। वह समस्त ज्ञेय पदार्थो का ज्ञाता है, किन्तु उसको जानने वाला अपर कोई नही है। तŸवज्ञ ज्ञानी पुरूष उसको महान् पुरातन पुरूष के रूप में वर्णन करते है-

"अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स श्रृणोत्यकर्णः।
स वेŸिा वेद्यं न च तस्यास्ति वेŸाा तमाहुरग्र्यं पुरूषं महान्तम्"॥[36]

इसके अनन्तर प्रकारान्तर से यह वर्णन किया गया है,कि उस ब्रह्म का सभी जगह पैर व हाथ है। उसका सर्वतः अर्थात् सभी जगह आख, सिर तथा मुख है। सभी जगह कानो वाला है। वह ब्रह्माण्ड में सभी को आवृत करके अवस्थित है-

"सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति"॥[37]

पुनः ब्रह्म के स्वरूप के विषय में वर्णन किया गया है,कि वह ब्रह्म अविद्या रूप अन्धकार से परे तथा सूर्य के समान स्वयं प्रकाश स्वरूप है। इस महान् पुरूष परमात्मा को मै यथावत् जानता हूँ-

"वेदाहमेतं पुरूषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय"॥[38]

वस्तुतः यह प्रकाश स्वरूप होने से सविशेष तथा निरूपणीय है। यदि निर्विशेष रूप में कथन किया जाये तो प्रकाश तथा तम दोनो से सर्वथा रहित कहना चाहिए। इसके अतिरिक्त यह कथन किया गया है,कि उस ब्रह्म से उत्कृष्ट अर्थात् श्रेष्ठ अपर अन्य कोई वस्तु नही है। सबसे अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण उससे सूक्ष्मतर भी कोई नही है। उससे अन्य कोई महŸार भी नही है। वस्तुतः समस्त ब्रह्माण्ड उससे व्याप्त है-

"यस्मात्परं नापरमस्ति कि´ंचिद्यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति कश्चित्।
वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरूषेण सर्वम्"॥

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत लेख का उद्देश्य अपने पाठकों को शारिरिक आरोग्य के प्रति जागरुक बनाना है। मनुष्य जीवन के चार लक्ष्य हैं-धर्म का संचय, अर्थ का उपार्जन,काम्य पदार्थों का भोग और अंत में अपवर्ग (मोक्ष) की प्राप्ति। यह सर्वविदित तथ्य है कि स्वस्थ शरीर से उक्त चारों लक्ष्य की प्राप्ति संभव है। रुग्ण (बीमार) शरीर से धार्मिक कार्यों का संपादन नहीं हो सकता। वाणिज्य, कृषि, पशुपालन आदि व्यवसायों के द्वारा अर्थोपार्जन भी रोग युक्त शरीर से नहीं किया जा सकता। शरीर नीरोग न हो तो सकल संसाधनों के होने पर भी आनंद के भोग में रुचि संभव नहीं। विवके, वैराग्य तप आदि मोक्षोपायों का अनुपालन भी स्वस्थ शरीर के माध्यम से ही किया जा सकता है। बस इसी दिशा में अध्येताओं का ध्यान आकृष्ट करने के लिए प्रस्तुत लेख का उपक्रम किया गया है।

विश्लेषण

उपस्थित लेख का वैशिष्ट्य यह है कि इसमें आयुर्वेदिक उद्धरणों के साथ वैदिक मंत्रों के द्वारा आरोग्य का वैशिष्ट्य प्रतिपादित किया गया है। यूँ तो आरोग्य के लिए चरक, संश्रुत, वाग्भट्ट आदि आयुर्वेदिक ऋषियों के ग्रन्थ पठनीय हैं। किन्तु विद्वानों को यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि आयुर्वेद का मूल भी वेदों में ही निहित है। आयुर्वेद के मौलिक सूत्र अथर्ववेद में पहले से ही विद्यमान थे। आयुर्वेदिक आचार्यों ने वहीं से विषय का ग्रहण करके स्वस्थ वृत्त संहिता आदि ग्रन्थें का प्रणयन किया है यही प्रतिपादन लेख की विशेषता है।

निष्कर्ष

स्वस्थ शरीर से धर्म के कार्य कर सकते हैं। धर्म के तीन स्कन्ध हैं- यज्ञ, दान और तप। इन तीनों की सिद्धि स्वस्थ शरीर से ही हो सकती है। धर्म से अर्थ की प्राप्ति हो सकती है। धर्म से प्राप्त अर्थ कामना को पूर्ण करता है। अधर्म से भी धन का संग्रह किया जा सकता है किन्तु अधर्म से अर्जित धन सदा विनाश का कारण बनता है। काम की पूर्ति के पश्चात मोक्ष की प्राप्ति के लिए भी रोग रहित शरीर और मन की प्रवृत्ति होती है। इसलिए महाकवि कालिदास ने कहा था कि-

शरीरमाधं खलुधर्म-साधनम् ।[17]
कुमारसम्भव 5/39

अर्थात् धर्म का मुख्य साधन स्वस्थ शरीर ही है, शेष अर्थ, काम और मोक्ष तो धर्म मूलक है अर्थात् यदि धर्म सिद्ध हो जाए तो मोक्ष की प्राप्ति भी सुकर हो जाती है। इसलिए विचारशील मनुष्य।के कर्त्तव्य है कि वह शरीर के आरोग्य के लिए सतत प्रयत्नशील रहे।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *यजुर्वेद 9/21*
2. *चरक सूत्रस्थान 1/15*
3. *शतपथ ब्राह्मण-1/7/1/5*
4. *यजुर्वेद 9/21*
5. *शुक्ल यजुर्वेद संहिता 36/24*
6. *अथर्ववेद 2/13/4*
7. *यजुर्वेद 20/21*
8. *ऋग्वेद 5/44/14*
9. *सुभाषित रत्न भाण्डागारम्*
10. *ऋग्वेद 8/6/28*
11. *यजुर्वेद 11/50*
12. *यजुर्वेद 18/12*
13. *ऋग्वेद 8/19/15*
14. *छन्दोग्य उपनिषद् 7/26/2*
15. *ऋग्वेद 10/117/6*
16. *गीता 3/13*
17. *कुमारसम्भव 5/39*